खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमन्तु मे

अन्तर्मन की दिव्य साधना है 'क्षमा'

प्रवचनांश : पूज्य बाबू 'युगल' जी, कोटा
संकलन : ब्र. नीलिमा जैन, कोटा

''यह क्षमा प्रेम का अग्रदूत,
मलमल कर कालिख धोता है।
भर भर देता अमृत प्याली,
यह बीज मुक्ति का बोता है।।''

क्षमावाणी महापर्व चिरकाल से भाव निद्रा में लीन प्राणियों को, ज्ञान का बीन बजाकर जगाने आया है, हमारे भीतर छुपी हुई मधु सी मधुरिम शक्तियों की अभिव्यक्ति का यह गौरवशाली दिवस है, इस रूप में क्षमापर्व अभिनंदनीय और वंदनीय तो है ही, बल्कि हृदय सिंहासन पर 'मणिमय कलश' के रूप में प्रतिष्ठा करने योग्य है।

सचमुच! युगों-युगों से टूटे हुए दो मानस को एक सूत्र में पिरो देने की क्षमता वाला यह पर्व कितना महान है जो अनादि की क्रोधादि जैसी तप्तायमान पाषाणी शिला पर मेघ घटा सा बरस पड़ता है जिससे कषायों का संपूर्ण कालिख धुलकर, जीवन की स्वच्छ शिला पर क्षमा का शीतल झरना बहने लगता है और विभावों का यह संस्कार सदा के लिए परिष्कृत हो जाता है।

इस पर्वराज का उदात्त दान क्षमा है, जो ऐसा धनिक व दानवीर है कि भर-भर कर क्षमा के रत्न लुटाने आया था, उसके पास तो देने को अटूट भंडार था अरे! चक्रवर्ती जैसा किमिच्छिक दान। जितना लूटना चाहो,

लूट लो, लेकिन दुर्भाग्य कहो या महाभाग्य हम हमारी अँजुली में कितना लूट पाये, यदि थोड़ा भी लूट लिया जाता, तो जीवन का कायाकल्प हो, कंचन सा निखर जाता। क्षमा तो एक ऐसा रसायन है, जिसकी घूँटी एक बार पी लेने पर हमारे मानसिक व शारीरिक विचार एवं भावनाएँ संतुलित व संयमित हो जाती हैं। वैमनस्य, तनाव, क्रोध, मान, मत्सर जैसे भयंकर दुष्कर्म का निष्कासन इस रसायन के पान द्वारा ही हो सकता है। वास्तव में क्षमा एक ऐसा तत्त्व है, जो सभी धर्मों में पूरा-पूरा परिव्याप्त रहता है, एक-एक धर्म का भाव अन्तहीन अनंत है, अमर्याद है, सिद्धदशा में तो इसकी चरम पराकाष्ठा उदित हो जाती है अत: क्षमा को अनंत धर्मों का प्रतिनिधिकरण कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

अरे! जीवन की दिव्य साधना का नाम क्षमा है, यह कोई अभिनय नहीं है, मात्र औपचारिक पद्धति भी नहीं, किन्तु इसका संबंध अपने अर्न्तभावों के प्रस्फुटन से है। दिगंबर दर्शन में तो क्षमा का गौरव पूरी गुरुता के साथ उद्घाटित हुआ है, जो सीधा हमारी चेतना को झंकृत कर, अतिशय रस से भरा, सदा विद्यमान, देवादिदेव चैतन्य के दर्शन के लिए कपाट खोल देता है, उसका क्षण भर का दर्शन अनंत भवों के कष्टों का छेदन करने वाला है, बस! यहीं से उसकी परिणति में उत्तम क्षमा का प्रारंभ होता है और वह कह उठता है हे आत्मदेव! आज के दिन में शपथ लेता हूँ कि भविष्य में कभी तेरा अपमान नहीं करूँगा, क्रोध जैसी अनगिनत वृत्तियों में पर्याय-पर्याय की ही प्रीति चलती रही, लेकिन तेरी शरण में आते ही मेरा पौरुष जाग उठा है, सच! अब मैं मुक्ति लेकर ही रहूँगा ऐसा क्षमा का विश्वव्यापी क्षेत्र होता है, जिसमें पामरता व दीनवृत्ति किंचित भी नहीं, बल्कि हाथी का स्वाभिमान पैदा हो जाता है।

'क्षमा' दो अक्षर का छोटा सा 'शब्द', लेकिन इसका ह्रार्द सागर जैसी विशालता एवं गहराई को अपने भीतर समेटे हुए है, जिसके तल में पहुँच जाने पर उस ब्रह्म लोक में भरे विलक्षण आनंद का एकरसमय संवेदन होता है, जिसकी समानता जगत के संपूर्ण वैभव से भी नहीं की जा सकती और तभी से इसका व्यवहारिक विधान एवं प्रकृति का संविधान

भी शुरू होता है, जिसके अन्तर्गत व्यवहार के सारे अंग दया, क्षमा, कारुण्य, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, विविध प्रकार के प्रशस्त अंग अनुप्राणित होते हैं। परमार्थतः तो प्रतिक्रमणादि का सारा काफिला ज्ञान की ही संताने हैं, अन्य कुछ नहीं। श्री समयसार परमागम में कई स्थानों पर इस प्रकरण में ज्ञान को ही इन अनेक विशेषणों द्वारा संबोधित किया है।

आत्म दृष्टि एवं अखंड ज्ञान स्वभाव के नेतृत्व एवं सम्यक् दिशा में इन सभी अंगों का संचालन होता है। एक बार ज्ञान की परिधि में आ जाने पर भूत-भविष्य-वर्तमान त्रिकालवर्ती, विचित्र-विचित्र शुभाशुभ कषायचक्र का तीव्र वेग क्षण मात्र में रुक जाता है और हमारी जीवन शैली में शांति-धैर्य, स्नेह, विश्वास जैसे अनूँठे गुण अंकुरित हो जाते हैं।

सचमुच! ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य को पवित्र व सुखी जीवन व्यतीत करने में मददगार होती हैं और इससे भी ऊँची बात यह कि हितैषी मित्र की तरह घोर विपत्तियों में अग्नि परीक्षाओं में, निराशाओं एवं शुष्क जीवन में, सफलता का मार्ग खोल देती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दू... यह व्यक्ति की बिखरी भावनाओं का पुर्नगठन करती है क्योंकि जहाँ क्रोध व अहं का अंश भी विद्यमान है, वहाँ एक-दूसरे से टकराव अवश्य होता है, फलस्वरूप अशांति फैलती जाती है तथा संवेदनशीलता का तो प्रश्न ही नहीं उठता, इन कुत्सित विचारों में सदैव पश्चाताप व आत्मग्लानि महसूस होती है वह स्वयं ही अपने मलिन परिणाम से घिर जाता है। सचमुच ऐसी वृत्तियाँ उत्थान व उत्कर्ष के पथ पर बड़ी बाधा बनकर खड़ी रहती हैं, इतना मात्र ही नहीं, उसके लिए मोक्ष का दरवाजा सदा के लिए बंद हो जाता है।

अरे 'क्षमा' तो एक ऐसा शक्तिशाली महामंत्र है, जिसका उच्चारण करने मात्र से सामने झूलती तलवार लेकर खड़े व्यक्ति की तलवार हाथ से गिर जाती है, अहं के शिखर पर चढ़ा व्यक्ति नीचे धरती पर आ जाता है, वास्तव में जिसका चित्त अध्यात्म के रंग में रंग गया हो, उसके जीवन का हर पहलू निर्मल व निश्चल हो जाता है और विश्व मैत्री की छाया में

हमारे हृदय से मलयागिरि चंदन जैसी क्षमा की सुगंधित धारा बहने लगती है, जो परस्पर संबंधों में मधुरता व घनिष्ठता पैदा करती है।

'क्षमा' की सीमा वचनों व वाणी तक नहीं, लेकिन अन्तरंग के शुद्धिकरण से है 'मिच्छामि दुक्कडम्' मेरे सब दोष मिथ्या हों – ऐसा हम जिनेन्द्रदेव के समक्ष एवं दूसरे व्यक्तियों से शब्दों में बोल देते हैं, परन्तु इससे दोष तो दूर होने वाले नहीं, क्योंकि दोषों के कारणभूत बीज को जहाँ तक जलाया नहीं जायेगा तब तक दोषों की पुनरावृत्ति चलती रहेगी, दोषों का पुनः पुनः स्मरण करने से दोषों की संतति लंबी हो जायेगी, और अनंत काल बीत जायेगा, इसलिए कमियों व त्रुटियों को नष्ट करने का एक मात्र निदान, निर्दोष निरंजन सत्ता का अवलंबन ही है।

इस प्रकार क्षमा के भावात्मक पक्ष पर विचार करें तो आत्मा सर्व ओर से क्षमा की धातु से ही निर्मित है। क्षमा की परिधि से कोई जीव बाहर निकला ही नहीं। उसके अस्तित्व को कोई भी आज तक महाबली सम्राट भी मिटा नहीं पाया। वह कभी मरता नहीं, उसमें जन्म भी नहीं, बंध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं इन सारे पर्याय भावों से न्यारा, कर्म व कर्म बंध से शून्य एक अनहोना तत्त्व है, जिसमें कुछ होना ही नहीं हैं यदि कुछ हो जाय, कुछ घटना घट जाय, क्रोध, बैर, द्वेष का प्रवेश हो जाय तो आत्मा का नाश ही हो जायेगा उसका अस्तित्व आज तक मिट गया होता। किन्तु अरे! उसमें कुछ घटना घटी ही नहीं, तुम क्यों शोर करते हो, वह तो फौलादी स्तूप है, उसका एक प्रदेश भी खिरता नहीं। ये पुण्य-पाप के भाव आत्मा की छत पर गर्जन कर चले जाते हैं, परन्तु आत्मा तो सदा से ही पूर्ण व शुद्ध वही का वही। आज भी देखो तो जो अनादि से था, वही मिलेगा, उसे अपवित्र माना एवं जाना बस यही अपवित्रता अर्थात् मिथ्यादर्शन रहा। और सम्यग्दर्शन उस शुद्ध आत्मा को शुद्ध स्वीकार करता हुआ आया, लेकिन इससे भी उस आत्मा की शुद्धता में वृद्धि नहीं हुई, क्योंकि वह तो दोनों प्रकार के कर्म व परिणाममात्र से रहित है।

फिर हम जो क्षमा माँगते है, वह क्षमा का भाव उस जीव तक कहाँ पहुँचता है, छूता तक नहीं, क्षमा माँगना व करना यह भी महा स्थूल,

कर्ता-कर्म का ही अज्ञान है यदि एक क्षमा मांगे और दूसरा क्षमा करें, ऐसा इस लोक में होने लगे, मान लो यह सच्चा हो भी जाय तो हमारी सारी क्रिया व परिणाम भी उस व्यक्ति के आधीन हो जायेंगे। दूसरा व्यक्ति हमें क्षमा करेगा, तब हम निर्दोष हो पायेंगे, क्या यह सिलसिला कभी समाप्त होने वाला है अरे! हर जीव पूरा पराधीन हो जायेगा और क्षमा मात्र इतनी ही रह जायेगी। लेकिन अपराध तो स्वयं का खड़ा किया हुआ है और भूल हमारी ही होती आ रही हैं, अतः उसके जिम्मेदार हम स्वयं हैं। अरे! किसी को दोषी कहकर कटघेरे में खड़ा करना तो आसान है, लेकिन दोष के कारण को तलाश पाना महाकठिन कार्य है और फिर उसे स्वीकार कर तत्काल निकाल फेंकना कठिन में कठिन हैं। स्वयं का पैदा किया दोष अपने ही नजदीक पड़ा है, उसका निष्कासन कैसे हो? जो मेरा यह निर्दोष शुद्ध कांचन द्रव्य हैं, उसके अवलंबन पूर्वक ही परिणति निर्दोष हो सकती है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।

जैसे एक जज किसी व्यक्ति पर दया करके उसे सजा से मुक्त कर दे, तो वह सदा के लिए मुक्त नहीं हुआ, क्योंकि अपराध उसके अन्दर ज्यों का त्यों पड़ा है। उसे सर्वप्रथम अपनी गलती को स्वीकार करना होगा, यदि वह अपनी गलती को दूर नहीं करता है तो पुनः-पुनः सजा को प्राप्त करता रहेगा। इसी प्रकार आत्मा की क्षमा भी अन्य जीव के आश्रित हो जाने से वह अपने दोष को दूर करने के लिए पर की ओर ताकता रहेगा, लेकिन जैनदर्शन पूर्ण स्वाधीनता को ही मुक्ति कहता है और इसका अधिकार चेतन को तो प्राप्त है ही परन्तु वह स्वतंत्रता अचेतन सत्ताओं को भी कुदरत से मिली है। देखो! 'क्षमा' पृथ्वी को भी कहते हैं जैसे पृथ्वी पर अग्नि जले युद्ध हो, प्रलय हो, जन्म-मरण हो, पत्थर बरसे लेकिन पृथ्वी आह नहीं करती, उसको जरा आँच तक नहीं आती, ऐसा पृथ्वी जैसा सहनशील, धीरतत्त्व है 'क्षमा'। जो इन विपदाओं के घटाटोप में भी अचल मेरु सा निष्कंप रहता है।

क्रोध को जीतने का नाम क्षमा है यह परिभाषा हम सुनते आये हैं, लेकिन क्रोध को जीतने का अर्थ हम क्या समझते है, इसका मतलब क्रोध

से द्वन्द करना या झंझट करना नहीं है, ऐसे तो वह कभी नहीं जायेगा, बल्कि बढ़ता जायेगा, किन्तु जैनदर्शन उसके सर्वनाश का अत्यन्त सुगम मार्ग बताता है कि क्रोधादि से अपना नाता तोड़ दो, तो क्रोध उत्पन्न ही नहीं होगा। जैसे शरीर में ज्वर आया है यदि उससे संघर्ष करोगे, तो वह नहीं जायेगा किन्तु एक गोली ले लो तो ज्वर उत्पन्न ही नहीं होगा, क्या क्रोधादि का अस्तित्व है जगत् में है जब हमारा कोई नुकसान करता है तब तो क्रोध भी करे, परन्तु कोई हमारा बिगाड़ कर ही नहीं सकता, तब हम किस पर क्रोध करें ? हमारी ध्रुव सत्ता में कुछ हुआ नहीं, होगा नहीं, तू हो-हल्ला करता है इसका नाम क्रोध का सेनापति मिथ्यादर्शन है।

यह क्रोध व सिरदर्द का शोर-शराबा अज्ञानता का है, भीतर झांक कर देखो तो दर्द भी मिट जाएगा और शोर-शराबा भी। एक बार रास्ता बदल लो, याने जगत से अपने को पृथक् जान लो, जब अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से इनकी पूरी भिन्नता जानकर, फिर प्रश्न करोगे, तो भी क्रोध नहीं आएगा। 'मैं केवल जानने वाला हूँ', यह मंत्र सिद्ध हो गया तो सारा दुःख मिट जाएगा और यदि जानने की सीमा से आगे बढ़ गए तो कष्टों के पर्वत आकर खड़े हो जाएगे। जैसे सूर्य सारे जगत को प्रकाशित करता है, किसको प्रकाशित करें, किसको नहीं; क्या यह भाव उसमें कभी होता है ? उसका काम तो मात्र प्रकाश करना है उसी प्रकार आत्मा का कार्य जानना मात्र है, आत्मा का स्वरूप पवित्र है, मिश्रण रूप नहीं,जब ज्ञान यह जान लेता है तो सभी विघ्न ध्वस्त हो जाते हैं।

जो पूर्ण हैं, उसे कौन पूर्ण करेगा ? जो अपने को क्रोधी मानता है, वही क्रोध का कर्त्ता है और जो मानता है कि मैं तो निष्क्रोध हूँ तो वह क्रोध क्यों करेगा ? आत्मा शांत प्रशांत महासागर है, उसमें क्रोध है ही कहाँ ? जैसे समुद्र में सारी दुनियाँ की नदियों का पानी गिरता है, किन्तु वह अपनी सीमा कहाँ छोड़ता है ? ऐसे ही क्रोध आत्मा की पर्याय में ऊपर ही ऊपर तैरता है, किन्तु अकषाय स्वभाव में क्रोध की कालिमा कहाँ है, एक प्रतिशत भी नहीं, वह तो प्रतिशत शून्य है। कोई क्रोध को आत्मा में रखना चाहे, तो वह हमेशा रह भी नहीं सकता क्योंकि क्षणिक है और मनुष्य

अपनी शांति को तो जिंदगी भर रख सकता है उससे कभी थकता नहीं है ठीक ऐसे ही व्यक्ति ज्ञान से कभी थकता नहीं क्योंकि वह स्वभाव है यदि थके तो केवलज्ञानी सबसे अधिक जानते-जानते थक जायेंगे अरे! इस ज्ञान का फल ही तो शांति है उससे जीव कैसे थक सकता है? उसमें तो कर्ता-भोक्ता और स्वामित्व का भार होता ही नहीं, ज्ञान तो आजाद तत्त्व है।

क्षमा के लिए महापुरुषों ने कहा भी है ''क्षमा वीरों का आभूषण है।'' सच में यह वचन कितना शक्तिशाली है - क्षमा के धारक पुरुष निर्भय, निशंक व वीर ही होते हैं उन पुरुषों पर कोई कितना ही प्रहार करे, हजारों गालियाँ दें, मारे, क्रोध करे, लेकिन उन्होंने तो भीतर क्षमा का कवच पहन लिया है जिन्हें क्रोध का विकल्प भी पैदा नहीं होता - वह सोचता है अरे! इस बेचारे ने मेरा क्या बिगाड़ा है, जब मैंने चैतन्य के एक-एक प्रदेश को देखा तो वहाँ सुख ही सुख की शय्या बिछी हुई थी, फिर क्रोध क्यों? मेरे लिए कोई अपराधी नहीं, शत्रु नहीं, मैं किससे प्रतिकार करूँ। अरे! ये तो मेरे लिए परम उपकारी हैं, इसने तो मेरे लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया।

ओहो! जिनश्रुत श्रवण से व्यवहार में भी चित्त भूमि मोम हो जाती है, कठोर हृदय पिघल जाता है और वह कह उठता है, हे विश्व के सर्व प्राणियो! हे पिता, हे पुत्री, हे बंधुओ, मुझे क्षमा करना, मेरे द्वारा आपको बहुत कष्ट पहुँचा है। मेरा इस जगत में कोई इष्ट-अनिष्ट नहीं, किसके प्रति राग, किसके प्रति द्वेष करूँ, मुझे तो इस सारे लोक में क्रोध के लिए कोई पदार्थ नजर नहीं आता, मेरी सारी मिथ्या कल्पनाएँ झूठी हैं।

क्षमा के दिन ''खम्मामि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे'' ऐसा बोलते भी हैं यह प्रवृत्ति तो हमारे स्टोक में सदा पड़ी रहना चाहिए, हमसे गलतियाँ तो बहुत होती हैं, हम अपने अपराध को स्वयं जानते हैं। परिवार हो या समाज, रात-दिन जहाँ हम रहते हैं, हमारे कटुवचन, कर्कश वचन से किसी को पीड़ा पहुँची हो, उसी क्षण हमारे रोम-रोम से क्षमा की किरणें फूट पड़ें आप मुझे क्षमा कीजिए - ऐसा कहकर उनके चरणों में गिर पड़े एवं दूसरे के भीतर भी कषाय बैठी न हो, उसका मन-वचन-

काय भी पूरी तरह स्वच्छ हो जाए। यहाँ पहला या दूसरा कोई दोषी नहीं है एक क्षणिक संयोग मात्र हुआ है। कैसा शिकवा व कैसी शिकायत? बल्कि यह समझे कि अरे! इसके सहयोग से तो मेरे उदयागत कर्म स्वयं निर्जरित हो रहे हैं। इस जीव के मिथ्या परिणाम से मेरे को कुछ आँच आने वाली नहीं है। अरे! जीव अपने इस कर्तृत्व के अहंकार से जगत का एक तिनका भी नहीं तोड़ सकता, एक तिनका तोड़े तो वह सुमेरु को भी हिला दे, लेकिन उसका यह प्रयत्न कभी साकार नहीं हुआ, निष्फल ही रहा। क्रोध तो विषैला भाव है प्रत्येक प्राणी के लिए शर्म जनक चीज है, अतः वह रखने लायक नहीं है, और यह आत्मा का स्वभाव नहीं होने से मंद भी होता है फिर मंद से मंदतर-मंदतम होता हुआ, ज्ञानियों को तो समूल नष्ट भी हो जाता है इस रीति से जीवन में तत्त्वज्ञान पूर्वक जब विशुद्धि का प्रादुर्भाव होता है तो कषाय और पापों की जलती आग पर क्षमा का शीतल जल गिरता है, तब अनादि की यह कषाय ज्वाला शांत हो जाती है।

सच! क्षमा के पास देने को तो बहुत है, लेकिन हमारे प्रदेश-प्रदेश पर थूवर के काँटे लगे हैं। मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी के शूल चुभ रहे हैं उन्हें सद्गुरु चुन-चुन कर, करुणा के गीत गा-गाकर निकाल रहे हैं कहते हैं तू निरंजन परमात्मतत्त्व होकर ऐसे अपवित्र काम क्यों करता है तूने उस दूसरे प्राणी को विषय क्यों बनाया? जिनेन्द्र देव ऐसा संबोधन हर क्षण हमें दे रहे हैं।

हमारे दिगम्बर धर्म की व्यवहार क्षमा का स्वरूप भी बड़ा सर्वोच्च है, हम अपने दोषों के परिहार के लिए सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करते समय बोलते हैं - **सत्त्वेषु मैत्री गुणेषु प्रमोदं, प्रेमभाव हो सब जीवों से गुणीजनों में हर्ष प्रभो।**

अरे! जो सत्तावान है, निगोद से लगाकर जगत के समस्त प्राणी मात्र उनसे मेरी मित्रता है, इस क्षमावृत्ति में स्वार्थ वृत्ति के लिए कोई अवकाश ही नहीं, लेकिन जो गुणों में श्रेष्ठ है, ज्ञान में विशेष होते हैं, ऐसे लौकिक व लोकोत्तर पुरुषों के प्रति चित्त में अनुराग होता है, प्रसन्नता होती है और

दुर्जन के प्रति माध्यस्थ भाव होता है क्योंकि क्षमावान के जीवन में अनुकूल-प्रतिकूल, दुर्जन-सज्जन की व्याख्या ही समाप्त हो गई है। उसके सारे विकार व दोष वृक्ष की जड़ की तरह मूल से उखड़ गये हैं। सचमुच पूर्ण सत् स्वरूपी जो मेरी आत्मवस्तु है, वह सत्त्वेषु अर्थात् त्रिकाल सत् है, अनन्त धर्मात्मक गुणों से भरपूर है। उसकी स्वीकृति जब परिणति में होती है, तो क्षमा नामक सत् पर्याय में प्रगट हो जाता है। सारा अज्ञानी लोक यह मानता है कि हमने जीवों को बहुत सताया, पीड़ा दी और अब मैं उसे बचाऊँगा, परोपकार करना है ऐसा अज्ञानी बचाने व मारने के मिथ्यात्व भाव से स्वयं पीड़ित है, कितना बचा पाया। अरे! एक जीव का दूसरे जीव को बचाने व पीड़ा का देने का विधान भी नहीं है। जगत् के प्राणियों के प्रति जो यह रागात्मक विकल्प उठता है, वह महा मिथ्यादर्शन है। यह भाव स्वयं अनंत क्रोध को छिपाये बैठा है। जब उस सत्ता के दर्शन पूर्वक प्रचंड कर्तृत्व के भाव का परिहार होता है तो वही से उत्तम क्षमा का प्रारंभ होता है। जो व्यवहार क्षमा है, वह भी भीतर भाव में पैदा होती है बाहर में किसी जीव को बचाने का भाव उसे छूता तक नहीं वह तो अपनी आयु से ही जीता है उसमें एक समय भी हम घटा-बढ़ा नहीं सकते।

अरे! भगवान जिनेन्द्र जैसे मोक्षमार्ग के नेता हमें मिले, ऐसा लगना चाहिए मुझे यह सबसे बड़ा धन मिल गया, इनके आगे इन जड़ हीरे-माणिक की क्या कीमत है? यह सारा वैभव तो उनके चरणों में धूल-धूसरित करने जैसा है। बस एक बार उनकी वीतराग शांत मुद्रा को देखकर अपनी श्रद्धा तो समर्पित करो, ऐसे देवादि का सहचार पाकर आत्मानुभूति व सम्यक्त्व का उदय न हो, ऐसा कभी हो नहीं सकता। निश्चित गारंटी है कि वह अतीन्द्रिय सुख तुझे मिलेगा ही। इस प्रकार द्रव्य स्तुति में भी अभेदता की चरम सीमा होती है, लेकिन वहाँ अकेला दास्य भाव नहीं होता वरन् पास में पड़ा ज्ञान उस भक्ति के भाव को हेय जानकर अपने परमात्मतत्त्व भी श्रद्धा कर लेता है। उसी समय इस भाव स्तुति में शाश्वत क्षमा का जन्म हो जाता है।

इसका प्रथम अध्याय यहीं से प्रारंभ होता है कि दोष का ज्ञान होना अति आवश्यक है हमारे भीतर अवगुणों का ढेर है, जिनकी उत्पत्ति अज्ञान से होती है। यदि हमारा कोई हितैषी हमें हमारे अवगुणों को दिखाता है तो उसके चरण छूकर मन की धुलाई कर, उसे स्वीकार करना।

अरे! लोक में भी ऐसा नैतिक वाक्य आता है – ''निंदक नियरे राखिये'' निदंक को अपने निकट रखना वह गुरु सदृश है, एक दोष भी बीज जैसा है, उसमें से अनंत दोषों की शाखायें फूट जाती हैं। एक दोहा लिखा था –

तेरे दोष बताय जो हिय में करुणा घोल।
तू उसके पग छू उसे, रे सोने में तोल।।

अरे! ऐसे गुरु फुटपाथ पर नहीं मिला करते हैं वे तो बड़े दुर्लभ कल्पवृक्ष जैसे होते हैं हमारी पात्रता तैयार हो तो आकाश से भी उतर कर आते हैं और सन्मार्ग दिखाकर पुनः लौट जाते हैं। बार-बार नहीं मिला करते इसलिए उनको अपने मनमंदिर में प्रतिष्ठित कर लो।

उनसे अपना आत्मनिरीक्षण करो, हम स्वयं के अवगुणों को नजरंदाज कर उन्हें छुपाते हैं, ढ़ंकते हैं और हमारी दृष्टि दूसरों के अवगुणों, बुराइयों को देखने व उन्हें उजागर करने में लगी रहती है, ऐसा क्यों? हम अनादि से जैसे हैं, वैसे ही बने रहना चाहते हैं – एक आदर्श महापुरुष सामने हो, उसे देखकर हम तत्काल अपने दोषों का परित्याग करें, उनके जीवन की पवित्रता, उज्ज्वलता, निर्दोषवृत्ति ऐसी होती है कि उससे दशों ही दिशायें निर्मल हो जाती हैं। हम भी उसी मार्ग का अनुशीलन करें।

अरे! इस युग में पूज्य गुरुदेव का अवतरण हुआ, वे निर्मल ज्ञान सम्पन्न थे। उन्होंने क्षमा का सत्य शुद्ध स्वरूप एवं गहन मर्म हमारे सामने रखा, जीवन धन्य कर दिया। आज के दिन पू. गुरुदेव के उद्‌गार होते थे – यदि मैंने किसी को पर्याय दृष्टि से देखा हो तो, वह मुझे क्षमा करें ऐसी होती है ज्ञानियों की उत्तम क्षमा। कहाँ से निकले हैं ये वचन? इन सद्‌गुरु ने बताया तू ध्रुव शाश्वत परमात्म द्रव्य है, उसके मधुर रस को चख तो

सही! हम भी उसका रसास्वादन करते हैं, तुम भी उसका रसास्वाद करोगे तो निहाल हो जाओगे, सच! सारे दोष पर्याय दृष्टि के फल में पैदा होते हैं, इसलिए उन्होंने हमारा पर्याय चक्षु सर्वथा बन्द द्रव्यार्थिक चक्षु खोल दिया इस धरा को अमर वरदान देकर गये हैं ऐसे गुरु साक्षात् भवतारक व मोह का निवारण करने वाले होते हैं।

जिन्हें आत्मा का अनुभव हो चुका है, वह पुरुष कपड़े पहनें हो या उतार दिये हों, ऐसा तनिक भी मत देखना, लेकिन जिन्हें दर्शन मोह का क्षय, उपशम व क्षयोपशम हो चुका है, अनुभूति सम्पन्न हो, ऐसे गुरु का बोध इस अनादि मोह पर वज्र की तरह गिरता है। वे कहते हैं – तेरे इस अजर-अमर तत्त्व पर कोई विपत्ति नहीं आती, तू जन्म-मरण रहित, घन ज्ञानस्वरूप है, यह ज्ञायक तेरे ज्ञान में प्रत्यक्ष हो रहा है, एक बार देख तो सही! ऐसा सुनते ही महिमा पूर्वक अविराम, चिंतनधारा शुरू हो जाती है और वह भावश्रुतज्ञान द्वारा अपने चैतन्य की आनन्दमयी अनुभूति कर लेता है, उसी क्षण मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी का निर्गमन होकर 'क्षमा' का शीतल चंद्र चैतन्य के आँगन में उदित हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि को चाहे बचा हुआ राग भी पड़ा है जली जेवरी जैसा। लेकिन उसका साहसी हृदय बोलता है कि मुझे प्रलय में भी बहना पड़े तो तो मैं उस प्रलय को ज्ञातृत्व भाव से देखता रहूँगा, परन्तु प्रलय मुझे स्पर्श भी नहीं कर सकता, देखो ज्ञानी को तनिक भी उसके दर्द का वेदन नहीं होता, चारों गतियों के जीव जिन्होंने सम्यक्त्व प्राप्त किया है, अरे! नरक का नारकी भी, नरक के वायुमंडल के बीच ऐसा वेदन करता है कि नरक की सर्दी व गर्मी मुझे छूती नहीं, मैं तो ऑल प्रूफ हूँ ओहो! सम्यक्त्व की महिमा को किन शब्दों से गावें? सम्यग्दृष्टि के लिए एक अंग्रेजी कविता में दिया है कि सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने निर्भय ज्ञान नेत्रों द्वारा आसमान में घटने वाली घटनाओं को दूर से देखा करते हैं, कविता बड़ी भावात्मक है।

पू. बाबूजी के मुखारविन्द से –

The Upright Man (सम्यग्दृष्टि पुरुष)

The man of life upright,
whose guiltless heart is free,
from all dishonest deeds
Or thoughts of vanity.

The man whose silent days,
In harmless joys are spent,
whom hopes cannot delude,
Nor sorrow discontent.
That man needs neither towers,
Nor armous for defence,
Nor secret vatults to fly,
from thunder's Violence.

He only can behold,
with unaffrighted eyes,
The horrors of the deep,
And the terrors of the Skies.

His soul is free from passions and emotions,
Subduers of all the worldly beings,
Away from the senses light eternal,
He every moment resides in it.

देखो! सम्यग्दृष्टि की कैसी निर्भय परिणति होती है!

इससे भी उत्कृष्ट उत्तम क्षमा के धारी तो वे निर्ग्रन्थ संत होते हैं, साक्षात् संवर निर्जरा तत्त्व। अरे इस जगत में यदि कोई देव है तो वीतरागी जैसा देव नहीं और कोई साधु है तो दिगम्बर साधु जैसा साधु नहीं और कोई आदमी है तो मुमुक्षु जैसा आदमी नहीं।

वाह रे मुनिदशा! साक्षात् सिद्धों की प्रतिछाया, सिद्धों की ही प्रतिमूर्ति है जो जंगल में निर्जन एकांत में पाषाण की तरह बैठे हैं अरे! उपसर्ग परिषह कैसे? भयंकर सर्दी, गर्मी, वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे प्रतिमा से

स्थित हैं, घने जंगल में डाँस, मच्छर, बिच्छू, सर्प आदि जंतु व शेर चीते खा रहे हैं सारा शरीर जर्जर हो गया है लेकिन ये कैसे सिंह हैं ? हिलते तक नहीं, लोगों को मुनिराज दु:खी नजर आते हैं, वे कहते हैं कितना सहते मुनि लेकिन अरे तुम्हें क्या पता है, मुनिराज सहते नहीं हैं, उनका उपयोग तो भंवरा बन गया है, भंवरा! आनंद का रस पी रहा है उसमें से निकलना ही नहीं चाहते, मुनि दया के पात्र नहीं होते, दया के पात्र तो दु:खी जीव होते हैं, मुनि तो भक्ति के पात्र होते हैं, उनके प्रति अपार भक्ति उछलती हैं, दु:खी देखोगे तो भक्ति कहाँ से आयेगी। क्या यह नग्न शरीर मुनि है ? बाह्य वेश मुनित्व नहीं होता। वास्तव में इस नग्न मिट्टी की आकृति के भीतर चैतन्य का सुगंधित कमल खिला है, वे मुनि भ्रमर वहाँ रहते हैं यह है मुनित्व। अरे! उपसर्ग हो रहा है, कोई सिर पर अग्नि जलाये, पत्थर बरसाये, पार्श्वनाथ पर पत्थर बरसे, गजकुमार, सुकुमाल ऐसे सैंकड़ों मुनीश्वर पर उपसर्ग ही उपसर्ग। फिर भी समता रस के आस्वादी, न ही खेद, न ही कोई खिन्नता। उनके प्रति अत्यंत साम्यभाव धर्मवृद्धि का भी मंगल वचन होता है। उनका चिंतवन तो यह होता है मेरे पर उपसर्ग कहाँ है ? अरे जलती होगी कोई झोपड़ी, लगी होगी आग कोई दूसरे देश में! मैं तो सुरक्षित व्रज के किले में रहता हूँ। ऐसी उनकी परिणति की निर्भयता होती है जो यह मानते हैं, मेरे पर उपसर्ग हुआ है, वह तो मुनि भी नहीं। अष्टपाहुड़ ग्रंथ में आया है – जो उपसर्गों में आनंद का अमृत पीते हैं, वे मुनि हैं, चैतन्य का नाम ही क्षमा है और यह सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र उस क्षमा की ही पर्याय जानना।

उसका रसास्वाद एक बार किया तो आनंद का सागर उछल पड़ा वह कह उठा ऐसा विलक्षण अतीन्द्रिय रस पूर्व में कभी नहीं चखा। अरे अमर कर देने वाला अमृत पीते हैं ज्ञानी। नरक का नारकी, सम्यग्दृष्टि, तिर्यंच गति के मेंढ़क, चिड़िया, पानी का मगरमच्छ, वहाँ के वायुमंडल के बीच ऐसा ही क्षमा का अतीन्द्रिय रस पीते हैं वह यह मानते हैं कि नरक और तिर्यंच का वायुमंडल मुझे छूता भी नहीं मैं नरक में रहता हूँ पर नरक मुझमें नहीं रहता।

अरे! सम्यग्दृष्टि ने तो सदा के लिए राग व अज्ञान का अभाव ही कर दिया, ममत्व टूट गया है रागादि दिखायी देने पर भी वे उससे बहुत दूर पड़े हैं। रागादि के बीच भी वह उनसे अत्यन्त विरक्त रहता है।

श्री समयसार परमागम में आचार्य अमृतचन्द्र भगवंत स्वयं ही प्रश्न करते हैं -

प्रश्न - सम्यग्दृष्टि को राग किस कारण से होता है?

उत्तर आया - किसी भी कारण से नहीं होता।

फिर से प्रश्न किया - तो फिर राग की खान कौनसी है?

उत्तर आया - अज्ञान है।

ऐसा क्यों?

क्योंकि राग-द्वेष-मोह की संतति अज्ञान से चलती है राग-द्वेष-परविषय में भी नहीं देखे जाते और सम्यग्दृष्टि को भी नहीं है क्योंकि उसके अज्ञान का अभाव है। ऐसा स्वयं आचार्य लिखते हैं।

दुनियाँ के लोग चाहे कितना ही शोर करें, सम्यग्दृष्टि को बहुत राग है, भोगों के बीच रहता है, खाता है-पीता है, भोग भोगता है, भक्ति, पूजन, वंदना करता है, क्रोध करता हुआ भी देखा जाता है, किन्तु हे दुनिया वालो! तुम उसे वहाँ देखते हो, जहाँ ज्ञानी नहीं रहता, उसके रहने की बस्ती अलग है, वह महलों में भी अपनी अनंत गुणराशि का भोग करता है, इन जड़राशि का नहीं।

ज्ञानी ने तो राग की खान अज्ञान में आग लगा दी है, दियासलाई लगा दी है, इसलिए वह उसे होते ही नहीं है, नियमसार कलश 34 में आया है - ''विभाव असत् होने से हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं है, हम तो हमारे हृदय कमल में स्थित शुद्ध चैतन्य का ही निरन्तर अनुभव करते हैं'' ऐसे गंभीर वचन हैं आगम के और भी सुन्दर व स्पष्ट वचन आये हैं।

नियमसार गाथा 39 - त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को विभाव स्थान नहीं है।

आत्मध्यान की उपादेयता बताते हुए नियमसार गाथा 92, श्लोक 123 में आचार्यदेव ध्यान व ध्येय के विकल्प को भी निरर्थक सिद्ध करते हैं।

ध्यान-ध्येयादिक, सुतप (विकल्प) कल्पनामात्र रम्य है ऐसा जानकर धीमान् सहज परमानंदरूपी पीयूष में डूबते हुए ऐसे सहज एक परमात्मा का आश्रय करते हैं।

वास्तव में अज्ञानी व्यवहार दृष्टिवाला उन ज्ञान-ज्ञेय व ध्यान-ध्येय, व्रत-तप-शील के विकल्पों में ही उलझा रहता है। इन भेदों को भेदकर वह शुद्धनय के द्वारा अपने एक अभेद शुद्ध एक भूतार्थ तत्त्व की अनुभूति नहीं करता। परिणाम दृष्टि का व्यामोह होने से उस परमभाव की श्रद्धा नहीं करता। लेकिन धीमान्, सम्यग्दृष्टि पुरुष तो अपने उस एक परमात्म द्रव्य का आश्रय करते हैं, इन तुच्छ विकल्पों की कल्पना में किंचित् रमते नहीं हैं वहाँ से हटकर निर्विकल्प चैतन्य के घनस्वभाव का अनुभव कर लेते हैं और भी गहन भाव उसमें भरे हुए हैं कि अमृत को पीते हुए वे ज्ञानी मकरन्द सदैव उसी में रमते रहते हैं।

सम्यग्दृष्टि पुरुष की निष्कंप ज्ञान परिणति की बहुत ही महिमा पूर्वक प्रशंसा, समयसार, नियमसार आदि ग्रन्थों में आयी है।

श्री समयसार के निर्जरा अधिकार का श्लोक 154 है।

जिसके भय से चलायमान होते हुए तीनों लोक अपने मार्ग को छोड़ देते हैं, ऐसा वज्रपात होने पर भी सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावत: निर्भय होने से, स्वयं अपने को जिसका ज्ञान रूपी शरीर अबध्य है, ऐसा जानते हुए ज्ञान से च्युत नहीं होते।

कलश टीका 155-156, पृष्ठ 138 - सम्यग्दृष्टि जीव निरंतर अपने त्रिकाल जीव के शुद्ध स्वरूप को अनुभवता है, आस्वादता है।

नियमसार : परम समाधि अधिकार कलश 215 - सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर, नित्यानन्दमय सहज शुद्ध चैतन्यरूप जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है, उस शुद्ध जीवास्तिकाय में वह सदा विहरता है और पश्चात् त्रिभुवन जनों से अत्यन्त पूजित ऐसा जिन होता है।

देखो! आचार्य भगवंतों ने स्वयं स्थान-स्थान पर सम्यग्दृष्टि आत्मा के गीत गाये हैं, वह जो कर्म मात्र से विरक्त हो चुका, अत: वह निरभिलाष,

कर्म के प्रति अत्यन्त निशंक व निरवांछक होता है, वह तो अपने एकाकी शुद्ध जीवत्व का ही अनुभव किया करता है ज्ञान में ही वर्तन करता है तथा सदा उसी में स्थित रहता है, कर्म व कर्म के उदय से होने वाले भावों में रंजित नहीं होता, उसे करता तो नहीं, लेकिन उनका वेदक-भोक्ता भी नहीं, इस प्रकार ज्ञानी को तो अपनी ज्ञान संपदा के भोग से फुर्सत नहीं, वह वहाँ से निकलता ही नहीं है। ऐसे सम्यग्दृष्टि को जिन कहा उसे परमात्मा के निकट बैठाया है, वह त्रैलोक्य पूज्य होता है, यह उसके सम्मानस्वरूप वचन कहा, हम भी उनको वंदन करते हैं।

ऐसे पुरुष जीवंत देखो, अपने परमानंद का क्षण-क्षण में झरता आनंद पीते हैं। वीतरागी मुनिश्वरों की क्षमा तो आचरण में उतर गई है, इसलिए उपसर्गों में भी वे उस क्षमा की फौलादी गुफा में ध्यानस्थ हो जाते हैं, वे यह नहीं सोचते कि मैं मुनि हूँ इसलिए मुझे क्षमाशील रहना चाहिए, यह उपसर्ग सहन करना चाहिए यदि ऐसा विकल्प आ भी जावे तो वह सम्यग्दृष्टि भी नहीं, मुनि तो बहुत दूर की बात! प्रचुर क्षमा का स्वरूप देखना हो तो शांत प्रशांत मुनिराजों में देखो। अरे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भी वैसा ही आनंद पीते हैं, जैसा दिगम्बर साधु। उनको तो शेष राग गोखूर जैसा चुल्लू भर रह गया है, जाने की तैयारी में है अब पुनः लौटकर आने वाला नहीं है, क्योंकि ज्ञानी ने अणुमात्र से अपना संबंध विच्छेद कर लिया है, चारित्र के उदयवश लाचारी है, इसलिए राग के साथ रहना पड़ता है लेकिन उसका सशक्त ज्ञान बोलता है कि यह तो मेरी शुद्धोपयोग की एक फूंक में उड़ जाने वाला है, ध्यान की अग्नि में जल जाने वाला है, इसकी मुझे तनिक भी चिंता नहीं है।

अरे! सम्यग्दृष्टि को तो निरन्तर ज्ञानमय भाव का ही संवेदन होता है, उसकी हर समय की अनुभूति वही होती है। जैसे स्वर्ण धातु में से स्वर्ण के आभूषण बनते हैं, पीतल के नहीं। ऐसे ही ज्ञानमय भाव के कुण्ड में से ज्ञान की ही धाराएँ निकलती हैं और यह क्षमा की पवित्र गंगोत्री सम्यग्दृष्टि व मुनीश्वरों के भीतर कल्लोलें भरती हुई सिद्ध दशा में जाकर अपना पूर्ण कपाट खोल देती है, ऐसी शांतिवाहिनी क्षमा सचमुच अन्तर्मन

की दिव्य उपासना है, साधना है, परम समाधि, निर्विकल्प ध्यानावली है।

मधुरिम काव्य की कुछ पंक्तियाँ हैं - (पूज्य बाबूजी द्वारा रचित)

''अब निखर उठेगा यह मानस,
यह क्षमा करेगा कंचन सा।
छा जावेगा यह जीवन में,
शिशु पर माता के अंचल सा।।''

''तब एक-एक क्षण जीवन का,
बस पर्वराज बन जायेगा।
यह जीवन है या पर्वराज,
यह भेद नहीं रह पावेगा।।''

''फिर अपने और पराये की,
नहिं जीवन में दुविधा होगी।
फिर कौन क्षमा का पात्र कहो,
जब क्षमामयी वसुधा होगी।।''

मंगलमय क्षमापर्व जयवंत वर्ते, जयवंत वर्ते.....।

'क्षमापर्व'
अश्विन कृष्ण एकम सं. 2079
दिनांक 11 सितम्बर 2022

आचार्य कुन्दकुन्द फाउण्डेशन
कोटा
मो. 9414181512

❀❀❀